International Journal of Applied Research 2021; 7(8): 353-355

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(8): 353-355
www.allresearchjournal.com
Received: 03-06-2021
Accepted: 12-07-2021

अभिनन्दन पाण्डेय
शोध छात्र दर्शन एवं संस्कृति विभाग, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

Corresponding Author:
अभिनन्दन पाण्डेय
शोध छात्र दर्शन एवं संस्कृति विभाग, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

गीता का निष्काम कर्मयोग

अभिनन्दन पाण्डेय

सारांश
कर्म का सिद्धान्त हिन्दू या भारतीय धर्म का मूल है। कर्म का अर्थ है क्रिया/act/action/performance/duty कर्म के दो प्रकार है :–
1. सकाम कर्म
2. निष्काम कर्म
सकाम कर्म वे कर्म होते है जो हमें जन्म–मरण के चक्र में बाँधे रहते है, हम इनसे मुक्त नहीं होते। यह कर्म का प्रथम चरण होता है। सामान्य मनुष्य इसी प्रकार के कर्म करते है। संपूर्ण सृष्टि जमा व खर्च का ही खेल है। इच्छा फल–भावना इत्यादि यही इसके मूल है।
निष्काम कर्म हमें बंधन में नहीं बाँधते है, यही हमें मुक्ति दिला सकते है, यह कर्म केवल कर्म की भावना से ही किये जाते है न कि फल की प्राप्ति की भावना से निष्काम कर्म ही श्रीमद्भगवदगीता का मूल है। यही केवल मूल रूप से सम्पूर्ण भारतीय दर्शन के कर्म को फल की भावना से न करने का मूल भी है। चित्त के शुद्धि का मूल भी निष्काम कर्म ही है।
श्रीकृष्ण इसे 'निष्काम कर्म–योग' कहते है जो साधना का आदर्श यानी साध्य व साधना दोनो है। यही जीवन की सच्चाई को अभिभूत करने का आदर्श भी है।

कूटशब्दः निष्काम कर्म, अनाशक्त, कर्म, कृत प्रणाय, अकृताम्युपगम्

प्रस्तावनाः
श्रीमद्भगवद गीता ने सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन किया। कर्म, ज्ञान योग, मोक्ष, निर्भयता इत्यादि तमाम गुणों का अद्वितीय समन्वय है फिर भी कर्म पर गीता के द्वितीय अध्याय में विशेष जोर देकर व्याख्यायित किया गया है।
गीता के निष्काम कर्म के अनुसार कोई भी जीव बिना कर्म किए एक पल भी नही रह सकता चाहे व योगी हो या सामान्य पुरूष, क्यों कि सांस लेना भी एक कर्म है। प्रत्येक व्यक्ति को उसे उसके कर्म का फल भी अवश्य मिलता है तो फल की चिन्ता किये बिना ही कर्म करें। कर्म के अनुसार ही व्यक्ति का जीवन व भविष्य का निर्धारण उसका कर्म ही करता है, कर्म ही प्रधान है। निष्काम कर्म को लेकर गीता के द्वितीय अध्याय में कहा गया है :–

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सडोडस्त्व कर्माणि।''

अर्थात् कर्म करने में ही तेरा अधिकार है फल में कभी नहीं ऐसा समझ कि फल है ही नहीं, फल की वासना वाला भी मत हो और कर्म करने में तेरी अश्रद्धा भी न हो।
भगवान् श्रीकृष्ण पहली बार 39वें श्लोक में कर्म शब्द का प्रयोग करते है, किन्तु यह नहीं बताते है कि वह कर्म है क्या और उसे करें कैसे?
तब प्रश्न उठता है कि कर्म क्या है :–
सम्पूर्ण गीता की रचना ही निष्क्रिय और कि कर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्म के विषय में मोहित कराने के उद्देश्य से की गयी है। गीता में श्रीकृष्ण निरन्तर अनासक्त कर्मयोग करने का आदेश देते है मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह भावनाओं और कर्म के परिणामों के सम्बन्ध में चिंतनशील रहता है। जब भी उसके चाहे या न चाहे पर कर्म का फल प्रभावित नहीं होता जैसे कि कर्मवाद के अनुसार मनुष्य जो करता है उसी का फल उसे मिलता है। ''जैसी करनी वैसी भरनी''। अर्थात् जैसे ही किसान परिश्रम करके बीज रोपण व पौधों की देख–रेख करता है निश्चित तौर पर व एक अच्छे फसल की भी आशा करता है और उसे प्राप्त भी होता है।

उसी प्रकार शुभ या अच्छे कर्मो का फल अच्छा व बुरें कर्मों का फल बुरा होता है।
कर्म को लेकर ''कृतप्रणाश' व 'अकृताभ्युपगम्' की अवधारणा है, अर्थात् कृतप्रणाश के अनुसार किये हुए कर्मो का फल कभी नष्ट नहीं होता और 'अकृताभ्युपगम्' के धारणा के अनुसार बिना किये हुए कर्मो का फल भी नहीं प्राप्त होता है।
अगर हम सम्पूर्ण भारतीय दर्शन के केवल मूल रूपों में कर्म को जानने का प्रयास करे तो विभिन्न दर्शनों ने इसे विभिन्न प्रकार का बताया है। कर्म–सिद्धान्त सभी दर्शनों की कही न कहीं आधारशिला भी है जो उसे व्यवहारिक भी बनाती है, भारतीय दर्शन में इसे कई अन्य सिद्धान्त से भी अधिक अच्छा, व्यवहारिक मूल माना जाता है।

अगर देखा जाए तो कर्म के दो पक्ष है

1. केवल कर्म सिद्धान्त रूप
2. कर्म का व्यवहारिक या क्रियात्मक रूप

जबकि दर्शन को छोड़कर सभी दार्शनिक चाहे वे आस्तिक हो या नास्तिक सभी इसे स्वीकार करते है। कर्म के बात पर अगर हम मीमांसा में अवधारणा देखे तो इसे यज्ञ यदि या वेदानुकुल कर्म करने के रूप में स्वीकार किया जाता है। कर्म व कर्मफल के सिद्धान्त को जोड़ने के लिए मीमांसा में अदृश्य शक्ति अपूर्व की अवधारणा की गई है। अपूर्व वह नैतिक व्यवस्था, कर्मकाण्डीय व्यवस्था व कार्य–कारण के सिद्धान्त के रूप में माना जाता है। कर्मो का संचय ही अपूर्व है। इसे मीमांसा में शक्तिकार भी कहते है।
बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसपुत्पाद को कर्म का सिद्धान्त माना जाता है। इसमें भी यही कहा गया है कि दुःख का कारण है यानी जब आप फल की आसक्ति करेंगे तभी दुःख होगा अन्यथा नहीं। सापेक्ष रूप में प्रतीत समुत्पाद कारण–कार्य–वाद है इसका नियम है–''अस्मित (कारणे) सति, इदं (कार्य) भवति'' अर्थात् कारण के होने पर कार्य होती है। यही बुद्ध का मध्यप्रतिपदा भी है।
इसी प्रकार कर्म से विश्वास रखने वाले दार्शनिको ने माना कि हमारा वर्तमान जीवन भी हमारे पूर्ववत् कर्मों का फल हैं जो हमने अपने अतीत में किया था और भविष्य जीवन हमारे वर्तमान के कर्मों का फल होगा। इस दृष्टि से कर्म के तीन प्रकार माने जाते है।

1. संचित कर्म
2. प्रारब्ध कर्म
3. संचीयमान कर्म

1. **संचित कर्मः**–संचित कर्म वह है जो अतीत के कर्मों से उत्पन्न होता है परन्तु जिसका फल अभी मिलना शुरु नहीं हुआ है इस कर्म का सम्बन्ध हमारे भूत से है।
2. **प्रारब्ध कर्मः**–प्रारब्ध कर्म वह है जिसका फल मिलना अभी शुरु हो गया है इसका सम्बन्ध भी हमारे भूत/अतीत के जीवन से संबंधित है।
3. **संचीयमान कर्मः**–वर्तमान जीवन के कर्मो को जिनका फल भविष्य में मिलेगा, जिसे संचीयमान कर्म कहते है। कर्म के यही तीन प्रकार कही न कहीं सृष्टि के मूल व मानव जगत के आधार है।

कर्म की क्रिया का आधार द्रव्य है तब यह कर्म क्रियात्मक रूप में पाँच प्रकार से होता हैं–

- उत्प्रेक्षण– ऊपर जाना–बाल को ऊपर फेंकना
- अवक्षेपण– छत पर से किसी वस्तु को नीचे फेंकना
- संकुचन– किसी वस्तु को सिकोड़ना
- प्रसारण– किसी वस्तु का विस्तार करना
- गमन– चलना

अगर पाश्चात्य की तरफ भी नजर दौड़ाये तो हम पायेंगे कि पाश्चात्य दर्शन में भी कर्म की बड़ी भूमिका रही है। 19वीं सदी के दार्शनिक ''मेरा स्थान मेरा कर्तव्य'' जो बैडले महोदय द्वारा दिया गया है। जिसे अपनाना मूल से अनिवार्य है। क्योंकि जहाँ कर्तव्य है वही अधिकार है और अधिकार अगर है तो कुछ कर्तव्य भी।
इसी प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक कांट ने भी अपनी पुस्तक ''व्याहारिक बुद्धि की आलोचना'' में कर्म के सिद्धान्त के लिए ''कर्तव्य के लिए कर्तव्य'' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

तालिका 1: ''कर्तव्य के लिए कर्तव्य'' (कांट)

पूर्ण कर्तव्य	अपूर्ण कर्तव्य
स्वच्छन्दता व स्वतंत्र संकल्प के साथ	परिस्थितिजन्य
ऋण चुकाना	मृत्यु से किसी को बचाने के लिए झूठ बोल देना

कांट पूर्ण कर्तव्य को ही कर्तव्य के लिए कर्तव्य सिद्धांत या निरपेक्ष आदेश का सिद्धान्त कहते है।
'नैतिक नियम के प्रति सम्मान की भावना से प्रेरित होकर, इसी नियम के अनुरूप कर्म करने की अनिवार्यता ही कर्तव्य है।
ग्राउण्ड वर्क ऑफ दि मेटाफिजिक ऑफ मोरल्स कांट पेज–68
कांट "Du Kannet, denn du sollest" अर्थात तू कर सकता है तो तुझे ही करना चाहिए "Critique of Pratical Reason" कर्म संस्कृत शब्द से बना है जिसका अर्थ है–क्रिया प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कोई क्षण ऐसा नहीं है कि जब हम कोई न क्रिया कर रहे है। कर्म का अन्य अर्थ या रूप चेतन शील क्रिया, त्याग, कर्तव्य आत्म समर्पण आदि है। प्रत्येक कर्म जब उद्देश्य पूर्ण है तो मुक्ति कैसे मिलेगी। कर्म का अर्थ शारीरिक, मानसिक और वाकक्रिया है। पर यह मानव जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। गीता के निष्काय कर्म पर गाँधी जी जे ने 'अनाशक्ति योग' नामक ग्रंथ लिखा।
ज्ञानी और स्थित प्रश्न संकल्प स्वतंत्र से पूर्ण व्यक्ति ही सच्चा अनाशक्त/निष्काम कर्म योगी बन सकता है। क्योंकि उसकी बुद्धि स्थिर है, क्योंकि वह दुःख से अद्विग्न (दुखी) नहीं होता सुख से आसक्त नहीं होता, वह सूर्य की भांति हो जाता है, जिस सुख से आसक्त नहीं होता, वह सूर्य की भांति हो जाता है, जिस प्रकार प्रायः सूर्य के प्रकाश से कुहरों का धुंध हट जाता है।
निष्काम ही साधक रूप है, निष्काम ही बंधन का साधन है जिसमें आसक्ति का अभाव है वह पुरुष कर्म करता हुआ भी जल में कमल के पते के समान से लिप्त नहीं होता।

''ब्रह्मण्याधाय कर्मणि सड्गं व्यक्त्वा करोतियः।
लिप्यते न स पापेन पद्यपत्रमिवाम्भसा।।'' गीता–5/10

निष्काम कर्म में ही दो परस्पर विरोधी गुणों प्रवृत्ति व निवृत्ति का समन्वय होता है प्रवृत्ति का मूल कर्म का आदर्श है और निवृत्ति मूल वैराग्य का आदर्श है। गीता के प्रत्येक व्यक्ति के कर्म का सम्पादन करने का निवेदन या आदर्श प्रस्तुत करती है किन्तु कर्म–फल में आसक्ति का भाव न रखना ही इसका मूल रूप है। निष्काय कर्म योगी की सुख–दुख लाभ–हानि जय–पराजय से बहुत उपर होकर कार्य करता है। गीता में कहा ग्रया है–

सुख दुःखे समे कृत्वा, लाभा लाभौ जया जयै।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि''

गीता 2/38

अर्थात श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सुःख दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय को समान समझकर तू युद्ध के लिए तैयार हो, युद्ध करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा। अर्थात् सुःख में सर्वस्व और

दुःख में भी देवत्व है लड़ने या निष्काम करने में ही दोनों वस्तुएँ है। लड़ोगे तो पाप अर्थात् आवागमन को प्राप्त नहीं ही होंगे अतः तू निष्काम भाव से युद्ध के लिए तैयार होगे।

गीता के निष्काम कर्म की आधुनिक निष्काम उपयोगिता

आज की दुनिया जहाँ पूर्णतः स्वार्थी होने की ओर है तो इस तरह के कर्म की व्यावहारिक उपयोगिता सम्पूर्ण सृष्टि के हित में होगी। आज के इस वैज्ञानिक प्रगतिशील युग में इसकी व्यावहारिक उपादेयता और निष्काम उपयोगिता बढ़ गई है, इसका मुख्य कारण है कि विज्ञान ने जहाँ मानव के समस्त भौतिक ऐश्वयों से परिपूर्ण कर दिया है लेकिन मनुष्य का हृदय खोखला हो गया है। वर्तमान विश्व में मेरी दृष्टि में शायद ही ऐसा कोई स्वस्थ चित्त सम्पन्न वाला व्यक्ति होगा जो सारी सुख सुविधाओं के मध्य वैज्ञानिक प्रगतिशील ज्ञान से मंडित होते हुए श्री मानसिक दृष्टि से सुखी व शांत हो इसका मुख्य कारण है, कि गीता का जो निष्काय कर्म है इसकी व्यवहारिक उपादेयता का न होना है हम इसे केवल सिद्धान्तों व आदर्शों तक ही सीमित रखते है। निष्काम कर्म का जीता–जागता उदाहरण ये होगा कि यदि हम किसी सार्वजनिक जगह पर बैठे या खड़े है अगर कोई वहां गंदगी करता है तो हम उसे मना भी करने का निवेदन कर सकते है व साथ ही हम खुद भी वहाँ गंदगी न फैलाये।

वर्तमान में जो भय, आतंक, डर का जो वातावरण है उसे भी निष्काम दृष्टि से कर्म करके कम कर सकते है और वातावरण पर पड़ रहे प्रतिकूल प्रभाव पर भी हम नियंत्रण कर सकते है।

यही मोक्ष व मुक्ति का मार्ग मानव प्रजाति व सम्पूर्ण सृष्टि के लिए दिशात्मक रूप होगा।

जब कर्म सभी के कल्याण के लिए किये जाते है जिसमें खुद का स्वार्थ न हो तो वह कर्म, कर्मयोग हो जाता है। कर्मयोग सम्पूर्ण जगत के कल्याण के लिए है जब कि योग खुद या स्वयं के लिए है। यह आत्मिक स्वयं का होता है। निष्काय कर्म योग सम्पूर्ण अशुद्धियों को दूर करता है और यही मुक्ति/मोक्ष द्वार है।

संदर्भ

1. सिन्हा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद (1998) दर्शन की रूप रेखा दिल्ली, मोती लाल बनारसी दास
2. दत्ता और चटर्जी (2012) भारतीय दर्शन पटना पुस्तक भंडार स्वामी तेजोमयानंद पब्लिशिंग हाउस
3. श्रीमद्भागवत गीता (1923) गीता प्रेस गोरखपुर
4. स्मिथ (N.K.) Trans- इमैनुअल कांट – क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन
5. मिश्र प्रो सभा जीते (1987) कांट का दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
6. राधा कृष्णन डॉ0 (2014) भारतीय दर्शन भाग–1 राजपाल दिल्ली एंड सन्स
7. वात्स्यामन आचार्य रामचन्द्र (2011) श्रीमद्भागवत गीता में जीवन दर्शन आकुर्ली रोड, कांदिवली, पूर्वी मुंबई।